सख्त कानून कमज़ोर फैसले

हिंसक अपराध

औरतों के साथ होने वाले सभी अपराधों में बलात्कार जघन्यतम कहा जा सकता है। यह अपराध सिर्फ उसके शरीर को ही नहीं, औरत के मन-मस्तिष्क, उसकी पूरी मानसिकता को गहरी चोट पहुंचाता है। भारतीय समाज अपनी गली-सड़ी मान्यताओं के चलते बलात्कार की हुई औरत पर और भी अत्याचार करता है। अपराध की शिकार औरत ही अपराधी ठहरा दी जाती है। उसका औरत होना ही अपराध मान लिया जाता है।

पुरानी धार्मिक-सामाजिक सोच यही कहती आई है कि औरत के शरीर, उसकी यौनिकता के सामने पुरुष कमजोर पड़ जाता है। यानि पुरुष की कमज़ोरी के लिए एक बहाना ढूंढ कर समाज ने कितनी चतुराई से उसके अपराध पर पर्दा डाल दिया है। साथ ही औरत को अपने साथ हुए अत्याचार के लिए ज़िम्मेदार भी ठहरा दिया । यह तो हुई समाज में औरत को दबा कर रखने की एक चाल। आश्चर्य तो तब होता है जब आज बीसवीं सदी के अंत में पढ़े-लिखे व समझदार समझे जाने वाले लोगों में भी इसी सोच को देखा जाता है।

बलात्कार कानून

संविधान बनने के साथ जब कानूनी तौर पर औरत को मर्द के बराबर दर्जा दिया गया तभी उसके साथ होने वाले सभी तरह के अपराधों की तरफ खास ध्यान दिया गया। स्त्री संगठनों और नारी आंदोलन की कोशिशों से कानूनों को परख कर समय-समय पर उनमें बदलाव लाए गए। साठ के दशक में हुए ऐतिहासिक मुक़दमों और उनके फ़ैसलों ने इस बारे में जन चेतना फ़ैलाई। बलात्कार कानून की कमजोरियों को दूर करके उसे अधिक सख्त बनाने की कोशिशें की गई।

बलात्कारी के लिए कम से कम सात साल की सजा का प्रावधान रखा गया। संरक्षण में हुए बलात्कार के तहत बेगुनाही साबित करने की ज़िम्मेदारी दोषी पर डाली गई। इसके साथ न्यायाधीश को यह छूट दी गई कि खास परिस्थितियों में अपने विवेक से काम लेते हुए वह सज़ा कम भी कर सकता है। इसका उद्देश्य सिर्फ़ यह था कि सख्त कानून का ग़लत फायदा न उठाया जा सके। किसी बेगुनाह को फंसाया न जा सके। कानून एक साधन है, लेकिन बहुत कुछ निर्भर करता उसे लागू करने वालों पर।

एक सवाल

कानून के परिपेक्ष्य में बार-बार यह सवाल उठता है कि यदि स्वयं कानून के रक्षक, उसके विद्वान रूढ़ीवादि सामाजिक सोच से बंधे हों तो

क्या औरतों को न्याय मिल सकता है? यदि वे खुद अपने विचारों में नारी विरोधी हों तो क्या कानून नारी की मदद कर सकता है?

अभी कुछ महीने पहले दिए गए एक फैसले ने फिर एक बार कानून पर विश्वास को हिला दिया है। न्यायाधीशों के हाथ में सज़ा कम करने के अधिकार पर सवाल उठाया है। दो बलात्कारी लड़कों की सज़ा सात साल से घटा कर चार साल इसलिए कर दी गई कि "उनकी उम्र कम थी।" हालांकि लड़की की उम्र भी लगभग उतनी ही थी। "लड़की उनके साथ एक छत के नीचे रात गुज़ारने को राज़ी हो गई थी।" फिर तो रात को सफ़र करने वाली औरतों या रात की ड्यूटी देने वाली कर्मचारियों को बलात्कार के लिए तैयार रहना चाहिए। "लड़के वासना का शिकार होकर लड़की को देख कर अपने आपको रोक नहीं सके।"

इस फ़ैसले से यही आवाज निकलती है कि औरतों को अपना शरीर छिपा कर घर की चार-दीवारी में बंद रहना चाहिए वरना पुरुष वासना का शिकार होकर उन पर हमला कर देंगे।

जज साहब से पूछना चाहिए कि ऐसे भेड़िए तो घर के भीतर भी होते हैं, तो फिर औरतें कैसे बचेगी। अगर पुरुष अपने आपको काबू में नहीं रख सकते तो खराबी उनके साथ है। औरत उसकी सज़ा क्यों भुगते? यह तो वही बात हुई कि जंगली जानवर खुले घूमते रहें, इंसान पिंजरों में बंद हो जाएं। चोर डाकू आजाद रहें, ईमानदार लोग सुरक्षा के लिए जेल में बंद हो जाएं। वाह क्या न्याय है!

दूसरा सवाल

यह बात बड़े साफ तौर पर समझ में आती है

कि अधिकारिक पदों पर बैठने वाले लोग, चाहे वे पुरुष हों या स्त्रियां, जब तक अपने घिसे-पिटे विचारों से छुटकारा नहीं पाते औरतों के साथ अन्याय होता रहेगा। क्या उस दिन की इंतज़ार में औरतों के साथ अन्याय होते रहने देना चाहिए या कानून इतने सख्त हों कि उनमें व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों के लिए जगह ही न हो? खासतौर पर बलात्कार जैसे अपराध के मामलों में जहां इन अपराधों के कुछ ही मामले अदालत तक पहुंचते हैं और बहुत ही कम मामलों में सज़ा मिलती है।

□